6556

आ. श्री कैलाससागरसूरि ज्ञान मंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा

Received
17-5-97

तित्थयर

वर्ष २० : अंक १० फरवरी १९९७

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष २० : अंक १०
फरवरी १९९७

☐

संपादन
राजकुमारी बेगानी
लता बोथरा

☐

आजीवन : एक हजार रुपये
वार्षिक शुल्क : पचपन रुपये
प्रस्तुत अंक : पाँच रुपये

☐

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,
कलकत्ता-७००००७
दूरभाष : २३८२६५५

☐

मुद्रक
अनुप्रिया प्रिन्टर्स
६ ए, बड़ौदा ठाकुर लेन,
कलकत्ता-७

सूची

श्रावक-जीवन	२९३
पूर्णतल्लगच्छ का संक्षिप्त इतिहास	२९८
राजा सम्प्रति	३०७
क्या मांसाहार मानवीय आहार है?	३१२
संकलन	३२१

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं है, जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है। जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

NAHAR

Interior Decorator

5/1, Acharya Jagadish Chandra Bose Road,
CALCUTTA-700 020

Phone : 247-6874 Resi. : 244-3810

श्रावक जीवन

आचार्य श्री विजय भद्रगुप्त सुरीश्वरजी महाराज

पूर्वानुवृत्ति

अपने आप को समकितदृष्टि माननेवालों को आत्मनिरीक्षण करना चाहिए—"मेरे में ये प्रशम, संवेग, निर्वेद···अनुकंपा है या नही। यदि नहीं हैं ये गुण, तो फिर मेरे में 'सम्यग्दर्शन'—गुण प्रगट नहीं हुआ है क्या?" आत्मसाक्षिक चिंतन करना चाहिए।

समकितदृष्टि जिनवचन को ही सत्य मानता है :

अपनी श्रद्धा को भी शास्त्रदृष्टि से परख लेना चाहिए। "वही सच है और निःशंक है, जो जिनेश्वर भगवंतों ने कहा है।" यह शास्त्रदृष्टि की श्रद्धा है। वीतराग सर्वज्ञ भगवंतों के वचनों को ही सत्य मानते हो न? उन वचनों में शंका नहीं है न?

यदि आप वीतराग के वचनों को ही सत्य मानते हो तो दुनिया के दूसरे रागी-द्वेषी देवों के पास, उन के प्रभावों से प्रभावित होकर नहीं जाते हो न? यदि वीतराग परमात्मा के प्रति आप के हृदय में निःशंक श्रद्धा है तो दूसरे देवों के पास जाने का प्रयोजन क्या परन्तु आप लोगों की श्रद्धा ही कहाँ है वीतराग परमात्मा के प्रति?

एक गांव में हमारा चातुर्मास था। एक जैन युवक ने अपने जीवन की एक रोमांचक घटना सुनायी थी। उस युवक पर किसी दुष्ट देव का प्रभाव पड़ गया था। वह अन्यमनस्क बन गया था। उस गांव में एक मुसलमान फकीर रहता था। बड़ा मांत्रिक था। वह युवक भी फकीर के पास चला गया। युवक के ललाट पर केसर का तिलक था। फकीर हँसने लगा। उसने कहा 'तेरी बात सुन ली, मैं तुझे कहता हूं कि तू मेरे पास क्यों आया है? युवक ने कहा: आप कुछ मंत्र-तंत्र दें···मुझे ठीक हो जाय···'

फकीर मे कहा: 'भाई, तू जैन है न? क्या तेरे पास 'नवकार-मंत्र' नहीं है? इसी की आराधना कर। इससे बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र मेरे पास नहीं है।'

युवक ने कहा: 'मुझे शर्म आ गयी फकीर की बात सुनकर। मैं चुपचाप घर पर आ गया और बहुत भक्तिभाव से श्री नवकार मन्त्र का जाप करने लगा दैवी उपद्रव दूर हो गया।'

जिनवचन के प्रति यदि आपकी निःशंक श्रद्धा है, पूर्ण विश्वास है तो आप लोग सिवा जिनवचन और जिनशासन के, कहीं पर भी श्रद्धावनत नहीं होंगे।

प्रश्न : जिनवचनों में, वीतराग-वाणी में शंका तो नहीं होती है परन्तु जिज्ञासा तो हो सकती है न ?

महाराजश्री : हर बात को, हर तत्त्व को सही अर्थ में समझने के लिए शंका भी कर सकते हो ! शंका कहो, प्रश्न कहो, जिज्ञासा कहो, एक ही है। चाहिए तत्त्व को समझने की भावना। कभी ऐसा भी हो सकता है कि अपनी अल्प बुद्धि किसी तत्त्व को यथार्थ रूप में नहीं समझ पाती है। उस समय ऐसा मत बोलना कि 'मेरी समझ में यह बात नहीं आती है इसलिए मैं नहीं मानता हूं। मैं समझूंगा वही मानूंगा।'

पूर्ण पुरुष की बतायी हुई सभी बातें अपूर्ण मनुष्य अपनी अल्प बुद्धि से कैसे समझ सकता है ? दूसरी बात एक बात हम दो दिन पहले दो वर्ष पहले नहीं समझ पाये थे, आज समझ पाते हैं। बुद्धि कभी मन्द तो कभी तीव्र होती रहती है चूंकि बुद्धि का आधार 'मतिज्ञानावरण कर्म' का क्षयोपशम होता है। कर्मों का क्षयोपशम सर्वदा एक समान नहीं रहता है। कभी कम-कभी ज्यादा होता रहता है। इसलिए जहां बुद्धि रुक जाय, वहां श्रद्धा स्थापित कर लिया करो बुद्धि और श्रद्धा के सहारे मोक्षमार्ग पर चलते रहना है।

परमात्मा जिनेश्वर देव के धर्मशासन का तत्त्वज्ञान बहुत गहरा है। यदि उस तत्वज्ञान को पाने की तमन्ना है, बुद्धि है, समय है और ज्ञानी पुरुष का संयोग है, तो अवश्य तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिए। ज्यों ज्यों आप तत्वज्ञान पाते जाओगे, जिनेश्वर भगवंतों के प्रति आपकी श्रद्धा परिपुष्ट होती जायेगी। आप निशंक बन जाओगे। जिनशासन के प्रति आप का अहोभाव बढ़ जायेगा।

सम्यग्दर्शन का मूल परमात्म प्रीति

जिनशासन के श्रावक-श्राविका जो कि बुद्धिमान हैं वे यदि तत्वज्ञानी बन जायं तो ? श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समय के श्रावक-श्राविकाओं का वृत्तान्त आगमग्रंथों में पढ़ते हैं तो ऐसे तत्त्वज्ञानी श्रावक-श्राविकाओं के वृत्तान्त जानने को मिलते हैं। आनन्द श्रावक, सद्दालपुत्र ···· वगैरह श्रावक और सुलसा रेवती ···· जयन्ती वगैरह श्राविकायें कैसे तत्त्वज्ञ थे ? कैसी उनकी अपूर्व श्रद्धा थी और अद्भुत परमात्मप्रीति थी ? सुलसा श्राविका की एक घटना सुनाता हूं।

श्रमण भगवान महावीरदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा रखने वाला एक परिव्राजक [संन्यासी] था। उसका नाम था अंबड़। अम्बड़ महान इन्द्रजालिक था। विशिष्ट ज्ञान का धनी था। एक बार उसने भगवंत को कहा—'भगवंत, मैं राजगृही जा रहा हूं, मेरे योग्य कोई सेवा हो तो फरमाने की कृपा करें।'

भगवंत ने कहा : 'अम्बड़, वहां सुलसा श्राविका को 'धर्मलाभ' कहना।'

अम्बड़ ने नतमस्तक हो आज्ञा को स्वीकार किया और राजगृही की ओर चल दिया। परन्तु उसके मन में सुलसा के विषय में अनेक विचार आने लगे। 'सुलसा एक सामान्य श्राविका है। अलबत्ता, वह श्रीमंत घराने की है, व्रतधारी है—परन्तु ऐसी तो दूसरी भी श्राविकायें हैं… तो फिर सर्वज्ञ वीतराग ऐसे भगवंत ने सुलसा को 'धर्मलाभ' कहने को क्यों कहा ? सुलसा में ऐसी कौन सी बात है जिससे वह परमात्मा के हृदय में स्थान पा सकती है ? मुझे खोजनी होगी वह बात। उस ने सुलसा के परमात्मप्रेम की परीक्षा लेनी चाही। राजगृही के चार नगरद्वारों के बाहर चार रूप करने की योजना बनायी।

एक द्वार पर उसने ब्रह्मा का रूप बनाया। इन्द्रजालिक था न वह ? नगर में आग की तरह बात फैल गयी ब्रह्माजी के आगमन की। हजारों स्त्री-पुरुष ब्रह्माजी के दर्शन करने आये। एक न आयी सुलसा।

दूसरे द्वार पर अंबर ने विष्णु भगवान का रूप बनाया। नगर में वायुवेग से बात फैल गयी। हजारों स्त्री-पुरुष विष्णु भगवान के दर्शन करने पहुँच गये। न गयी मात्र सुलसा !

तीसरे दरवाजे पर अंबड़ ने महेश [शंकर] भगवान का रूप किया। नगर के हजारों स्त्री—पुरुष शंकर भगवान के दर्शन करने दरवाजे के बाहर पहुंच गये। न गयी मात्र सुलसा। अंबड के हृदय में सुलसा के प्रति निर्मल भक्तिभाव बढ़ता चला था।

चौथे दरवाजे पर अंबड़ ने पच्चीसवें तीर्थंकर का रूप किया। सारे नगर के लोग दर्शन करने गये परन्तु सुलसा नहीं गई ! तब अंबड़ को सुलसा के भव्य परमात्म-प्रेम की प्रतीति हुई। अंबड़ सोचता है—'वास्तव में सुलसा, श्रमण भगवान महावीर देव से ही तृप्त है, उन के पावन चरणों में ही समर्पित है। उसके हृदय में और कोई भी देव-देवी को स्थान नहीं है। वीतराग स्वरुप की ही एक चाह उसके मन में है।'

और जब अंबड़ परिव्राजिक सुलसा के घर पहुंचा, सुलसा को भगवान् का 'धर्मलाभ' कहा, तब सुलसा कैसी भावविभोर हो गई होगी….कैसे उसके रोम-रोम विकस्वर हो गये होंगे….और आँखों से हर्ष के आंसू बहने लगे होंगे …यह सब देखने को मात्र एक अंबड़ ही भाग्यशाली बना होगा। और वह देखकर उस के मन का पूर्ण समाधान हो गया होगा कि भगवान ने सुलसा को क्यों धर्मलाभ कहलाया।

सम्यग्दर्शन की जड़ है। परमात्म प्रीति। अविहड़ परमात्मप्रीति होने पर कोई भी सम्यग्दर्शन को हिला नहीं सकता है। न कोई भय हिला

सकता है, न कोई लालच। भय और लालच के सामने अडिग बनाये रखने वाला तत्व है प्रेम।

समकितदृष्टि जीव दुःखों से निर्भय :

समकितदृष्टि परमात्म प्रेमी होता है, अतः उसको परमात्मा के बताये हुए कर्म सिद्धान्त के ऊपर विश्वास होता है। पापकर्म के उदय से दुःख आता है और पुण्यकर्म के उदय से सुख मिलता है, इस जिनोक्त सिद्धान्त के ऊपर उसको श्रद्धा होती है। 'यदि मेरे पुण्य कर्म का उदय है तो मुझे कोई दुःखी नहीं कर सकता और यदि मेरे पाप कर्म का उदय है तो मुझे कोई सुखी नहीं कर सकता।' इस सिद्धान्त को आत्मसात् करनेवाला समकित दृष्टि जीव दुःख आने पर घबराता नहीं है और सुख आने पर अभिमान नहीं करता है।

एक बात मत भूलना। ग्रंथकार महर्षि ने पहले हीं कहा है कि व्रत धारणा करनेवालों को समकितदृष्टि होना अनिवार्य है। यानी जिस जीव ने सम्यग्दर्शन पाया हो, वही जीव व्रतधारी बन सकता है। ऐसा नियम क्यों बताया गया ? ऐसी शर्त क्यों रखी गयी ?

व्रतपालन में दृढ़ता चाहिये। मन का कमजोर व्यक्ति व्रतपालन नहीं कर सकता है। मन का ढीला मनुष्य दुःख आने पर व्रत को भंग कर सकता है। कोई सुख की लालच मिलने पर व्रत का भंग कर सकता है। सम्यग्दर्शन-गुण प्राप्त होने पर मनुष्य दृढ़ बनता है। श्रद्धा ही उसकी अपूर्व शक्ति होती है। उस शक्ति से वह व्रतपालन में समर्थ बन पाता है।

गुजरात का राजा सिद्धराज, बड़ी उम्र होने पर भी निःसंतान था। राजा-रानी को इस बात का दुःख था। पुत्रप्राप्ति की तीव्र झंखना थी दोनों को। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी जैसे महान् गुरुदेव का परिचय था, फिर भी सिद्धराज सोमनाथ महादेव के पास गया था। कोडीनार की अम्बादेवी के पास भी गया था। पुत्र प्राप्ति की इच्छा को परिपूर्ण करने के लिये। चूंकि सिद्धराज समकितदृष्टि नहीं था। जिन वचनों के प्रति उस के हृदय में पूर्ण श्रद्धा नहीं थी। जब कि राजा कुमारपाल समकितदृष्टि थे, तो कंटकेश्वरी देवी के भय बताने पर, त्रिशूल का प्रहार करने पर भी, देवी को पशुबलिदान नहीं दिया ! वे अपने व्रतों के पालन में सुदृढ़ रहे।

हर व्रत के पालन में भय और लालच आते रहते हैं। दृढ़ता के बिना व्रतपालन नहीं हो सकता है। कुछ संभावनायें इस प्रकार है।

- पहला व्रत है जानबूझ कर किसी निरपराध त्रस जीव को नहीं मारने का। मान लो आपको कोई संतान नहीं है। आपको संतान की तीव्र इच्छा है।

आप कोई पीर…फकीर या देवी-देवता के पास गये। आप को कहा गया—'एक पशु को बली चढ़ानी पड़ेगी। हम चढ़ा देंगे, आप पैसे दे देना….।' यदि आपकी दृढ़ता नहीं होगी तो आप पशुबली चढ़ाकर व्रत भंग कर दोगे।

● दूसरा व्रत है असत्य नहीं बोलने का। परन्तु किसी स्नेही या मित्र ने जूठी गवाही देने का दबाब डाला अथवा किसी ने बड़ी रिश्वत देकर आप को जूठ बोलने को कहा….तो ? अथवा आपको भय लगा कि 'यदि मैं जूठ नहीं बोलूँगा तो आफत में फँस जाऊँगा….तो ?' आप में दृढ़ता नही होगी तो व्रत भंग कर दोगे।

● तीसरा व्रत हैं चोरी नहीं करने का। परन्तु आपके सामने ऐसा संयोग उपस्थित हुआ कि यदि आप तस्करी (स्मगलिंग) करते हो तो आप को तीन-चार लाख रुपये मिलते हैं….कहिए, आप व्रत में दृढ़ रह सकोगे ?

● चौथा व्रत है स्वदारासंतोष और परस्त्री त्याग का। मान लो कि आप के सामने ऐसा ही प्रसंग आया….एकांत में किसी सुन्दर परस्त्री ने आप से प्रार्थना की….। क्या आप अपने व्रत में दृढ़ रह पाओगे ? रूप और सौन्दर्य की लालच छोटी नहीं होती है।

● पांचवां व्रत है परिग्रहपरिमाण का। आपने व्रत लिया हो दस लाख के परिमाण का। पुण्यकर्म के उदय से आप के पास दस लाख रुपये आ गये। अब भी दूसरे १०/२० लाख आ सकते हैं। क्या आप कमाना बंद कर सकोगे ?

यह तो मात्र अणुव्रतों को लेकर भयस्थान बताते। गुणव्रत और शिक्षाव्रतों को लेकर भी अनेक भयस्थान हैं। यदि आप का सम्यग्दर्शन पक्का होगा तो ही आप अच्छी तरह व्रत पालन कर सकोगे। इसलिए सम्यग्दर्शन को दृढ़ बनाये रखने की जागृति रहनी चाहिए। सम्यग्दर्शन जाना नहीं चाहिये।

इस प्रकार श्रावकधर्म के बारह व्रत देने से पूर्व, सद्गुरु व्रत लेने के लिए तत्पर बने महानुभाव में सम्यग्दर्शन है या नहीं यह देखते हैं। यदि सम्यग्दर्शन नहीं होता है तो पहले सम्यग्दर्शन-गुण प्रगट करने का उपदेश देते हैं, यानी श्रद्धावान् बनाते हैं।

श्रद्धावान्-समकितदृष्टि बने हुए मनुष्य को सर्वप्रथम कैसा उपदेश गुरु को देना चाहिये।

क्रमशः

पूर्णतल्लगच्छ का संक्षिप्त इतिहास

डा० शिव प्रसाद

पूर्वानुवृत्ति

पूर्णतल्लगच्छ के प्रमुख आचार्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

प्रद्युम्नसूरि

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है ये यशोभद्रसूरि के शिष्य और पट्टधर थे। इनके द्वारा रचित एकमात्र कृति है **मूलशुद्धिप्रकरण** अपरनाम **स्थानकप्रकरण** अपरनाम **सिद्धान्तसार** जो २५२ गाथाओं में महाराष्ट्री प्राकृत में निबद्ध है।[१३] इस ग्रन्थ में सम्यकत्व के बारे में विवरण प्राप्त होता है। इसकी वि० सं० ११८६ / ई० सन् ११३० में लिखी गयी एक प्रति अहमदाबाद स्थित विमलगच्छीय उपाश्रय में संरक्षित है। जैसलमेर[१४] ओर खंभात[१५] के ग्रन्थ भण्डारों से भी इसकी प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। इनके पट्टधर गुणसेनसूरि हुए।

देवचन्द्रसूरि

ये उक्त गुणसेनसूरि के शिष्य और पट्टधर थे। इन्होंने अपने प्रगुरु प्रद्युम्नसूरि की कृति **मूलशुद्धिप्रकरण** पर वि० स० ११४६ / ई० सन् १०९० में १३००० श्लोक परिमाण **वृत्ति** की रचना की।[१६] इस ग्रन्थ के कुछ कथानकों की गाथायें निर्वृत्तिकुलीन शीलांकसूरि द्वारा रचित **चउपन्नमहापुरिसचरिय** [रचनाकाल वि० सं० ९२५ / ई० सन् ८९६] से अक्षरशः मिलती हैं, जिसके आधार पर इस ग्रन्थ पर, उक्त कृति का प्रभाव बतलाया जाता है।[१७] इनकी दूसरी कृति **संतिनाहचरिय** [**शांतिनाथचरित**] वि० सं० ११६० / ई० सन् ११०४ में स्तम्भतीर्थ [वर्तमान खंभात] में रची गयी है।[१८] यह १२००० श्लोक परिमाण है। १६वें तीर्थंकर पर प्राकृत भाषा में रची गयी कृतियों में यह सबसे प्राचीन और विशाल है।

देवचन्द्रसूरि अपने समय के एक प्रतिभाशाली और विद्वान् आचार्य थे। अपने भावी शिष्य के रूप में एक शैव धर्मानुयायी गृहस्थ की अनुपस्थिति में उसकी अनुमति के बिना उसके अवयस्क पुत्र को प्राप्त करना तथा इससे उत्पन्न तत्कालिक समस्याओं का मन्त्री उदयन के सहयोग से सर्वमान्य हल ढूँढ निकालना इनकी विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है।

हेमचन्द्रसूरि

पूर्वोक्त आचार्य देवचन्द्रसूरि के सुविश्रुत शिष्य और पट्टधर आचार्य हेमचन्द्रसूरि श्वेताम्बर जैन परम्परा में "कलिकालसर्वज्ञ" के नाम से प्रसिद्ध है और इनका काल हैमयुग या सुवर्णयुग के नाम से जाना जाता है। विद्या और साहित्य के क्षेत्र में हेमचन्द्र का योगदान अद्वितीय है।[१९] इन्होंने अपने बारे में स्वरचित **द्वयाश्रयमहाकाव्य** [संस्कृत और प्राकृत] **सिद्धहेमशब्दानुशासन** की प्रशस्ति तथा **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित** की प्रशस्ति में कुछ जानकारी दी है, किन्तु उत्तरकालीन विभिन्न श्वेताम्बर जैन ग्रन्थकारों ने अपनी कृतियों में इनके जीवनचरित पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।[२०] इनका विवरण इस प्रकार है :—

ग्रन्थ	रचनाकार
१. मोहराजपराजय	मंत्री यशश्चन्द्र, रचनाकाल वि० सं० १२२८-३२ / ई० सन् ११७२-७६
२. कुमारपालप्रतिबोध	बड़गच्छीय सोमप्रभसूरि, रचनाकाल वि० सं० १२४१ / ई० सन् ११८५
३. प्रभावकचरित	राजगच्छीय प्रभाचन्द्रसूरि, रचनाकाल वि० सं० १३३४ / ई० सन् १२७८
४. प्रबन्धचिन्तामणि	नागेन्द्रगच्छीय मेरुतुंगसूरि, रचनाकाल वि० सं० १३६१ / ई० सन् १३०५
५. कल्पप्रदीप अपरनाम विविधतीर्थकल्प	खरतरगच्छीय आचार्य जिनप्रभसूरि रचनाकाल वि० सं० १३८९ / ई० सन् १३३३
६. प्रबन्धकोश	मलधारगच्छीय राजशेखरसूरि, रचनाकाल वि० सं० १४०५ / ई० सन् १३४९
७. पुरातनप्रबन्धसंग्रह	अज्ञात, रचनाकाल वि० सं० की १५वीं शताब्दी के आसपास
८. कुमारपालचरित्र	कृष्णर्षिगच्छीय आचार्य जयसिंहसूरि रचनाकाल वि० सं० १४२२ / ई० सन् १३६६
९. कुमारपाल प्रबन्ध	तपागच्छीय जिनमण्डनगणि, रचनाकाल वि० सं० १४९२ / ई० सन् १४३६

प्राप्त विवरणानुसार इनका जन्म वि० सं० ११४५ / ई० सन् १०८९ में धंधूका नगरी में हुआ था। इनके पिता का नाम चाचिग और माता का नाम पाहिणी था। ये श्रीमोढ वणिक ज्ञाति के थे। चाचिग शैवधर्मानुयायी थे और उनकी पत्नी पाहिणी जैन धर्मानुयायी थीं। साम्प्रदायिक सद्भाव का यह उच्च आदर्श आज भी जैन परम्परा में विद्यमान है।

हेमचन्द्र का बचपन का नाम चांगदेव था। ८ वर्ष की आयु में स्तम्भतीर्थ (वर्तमान खंभात) में इनकी दीक्षा हुई और सोमचन्द्र नाम रखा गया। अल्पायु में ही इन्होंने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया और वि० सं० ११६६ / ई० सन् १११० में हेमचन्द्र के नाम से आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये गये। जयसिंह सिद्धराज के ये सम्माननीय विद्वत् मित्र थे और सिद्धराज का उत्तराधिकारी कुमारपाल (वि० सं० ११९९-१२२९ / ई० सं० ११४४-११७३) इन्हें अपना गुरु मानता था। इन्हीं के प्रभाव से उसने अनेक जिनालयों का का निर्माण कराया, तीर्थयात्रायें की तथा अपने साम्राज्य में वर्ष के विशेष दिनों में पशुवध पर रोक लगा दी। वि० सं० १२२९ में ८४ वर्ष की आयु में हेमचन्द्रसूरि का देहावसान हुआ।

आचार्य हेमचन्द्र की साहित्य-साधना का क्षेत्र विशाल था। व्याकरण, छंद, अलंकार, कोश एवं काव्यविषयक इनकी अद्वितीय रचनाओं से प्रभावित होकर पाश्चात्य विद्वानों ने इन्हें ज्ञानमहोदधि कहा है। हेमचन्द्रसूरि द्वारा रचित ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है :[२१]

व्याकरण	: सिद्धहेमशब्दानुशान, सिद्धहेमशब्दानुशासनलघु, सिद्धहेमशब्दानुशासनबृहद्वृत्ति, सिद्धहेमशब्दानुशासनप्राकृतवृत्ति धातुपारायण, लिंगानुशासन, बृहन्न्यास, उणादिगणविवरण
कोष	: अभिधानचिन्तामणिस्वोपज्ञटीकासहित, अनेकार्थसंग्रह, निघन्टुशेषस्वोपज्ञटीकासहित, देशीनाममालास्वोपज्ञटीका-सहित।
अलंकार	: काव्यानुशासनस्वोपज्ञअलंकारचड़ामणि और विवेकवृत्ति के साथ।
छन्द	: छन्दानुशासनस्वोपज्ञटीकाके साथ।
दर्शन	: प्रमाणमीमांसास्वोपज्ञ वृत्ति के साथ।
इतिहास काव्य एवं व्याकरण	: संस्कृतद्वयाश्रयमहाकाव्य प्राकृतद्वयाश्रयमहाकाव्य
पौराणिक एवं ऐतिहासिक	: त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, परिशिष्टपर्व।
योग	: योगशास्त्रसटीक

इसके अतिरिक्त इन्होंने वीतरागस्तोत्र, अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका, अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका और महादेवस्तोत्र की भी रचना की है।

रामचन्द्रसूरि

ये हेमचन्द्रसूरि के योग्यतम शिष्य थे और उनके निधन के पश्चात् वि० सं० १२२९ / ई० स० ११७३ में उनके पट्टधर बने। इनकी विद्वता की ख्याति पूरे देश में थी, और इस काल के विद्वानों में हेमचन्द्रसूरि के पश्चात् इन्हीं का स्थान था। इनके जाति जन्मस्थान, माता-पिता आदि के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलाती। चौलुक्यनरेश जयसिंह सिद्धराज ने इनकी विद्वता से प्रभावित होकर इन्हें कविकटारमल्ल की उपाधि दी थी। हेमचन्द्रसूरि की मृत्यु से दुःखी कुमारपाल के शोक का रामचन्द्रसूरि ने ही शमन किया था। कुमारपाल के उत्तराधिकारी अजयपाल [वि० सं० १२२९-१२३२ / ई० सन् ११७३-११७६] और अपने कनिष्ठ गुरू भ्राता एवं प्रतिद्वन्दी बालचन्द्र के सम्मिलित षडयन्त्र से राजद्रोह के अभियोग में रामचन्द्र को असमय मृत्यु का बरण करना पड़ा।[२२]

रामचन्द्रसूरि अपने समय के श्रेष्ठतम विद्वानों में से थे। इन्होंने अपने ग्रन्थों में **प्रबन्धशतकर्तृ** इस विशेषण का प्रयोग किया है। पं० लालचन्द्र भगवान गांधी का मत है कि इन्होंने १०० प्रबन्ध अवश्य लिखे होंगे, जिनमें से कुछ आज अनुपलब्ध हैं।[२३] डा० योगीलाल सांडेसरा का मत है कि **'प्रबन्धशत'** शब्द किसी संख्या को सूचित नहीं करता अपितु इस नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ ही लिखा होगा।[२४] उनके द्वारा रची गयी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार है।

लघुविलास, यदुविलास, सत्यहरिश्चन्द्र, निर्भयभीमव्यायोग, मल्लिकामकरन्दप्रकरण, रोहिणीमृगांकप्रकरण, वनमालानाटिका, कौमुदीमित्रानन्द, नलविलास आदि ११ नाटक तथा **सुधाकलश** नामक सुभाषित संग्रह, **युगादिदेव द्वात्रिंशिका, प्रासादद्वात्रिंशिका, आदिदेवस्तव, मुनिसुव्रतद्वात्रिंशिका** आदि कई स्तोत्र। **कुमारविहारशतक** और **उदयनविहारप्रशस्ति**[२५] भी इन्ही की कृतियाँ हैं। अपने कनिष्ठगुरुभ्राता गुणचन्द्र के साथ इन्होंने **द्रव्यालंकार** और **नाट्यदर्पण** की वृत्ति के साथ रचना की। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कृतियाँ भी मिलती है "रामचन्द्र" मुद्रावाले जो अनेक स्तोत्र प्राप्त हुए हैं, वे इन रामचन्द्र के न होकर जावालिपुर के बृहद्गच्छीय रामचन्द्रसूरि के अवसिद्ध हुए हैं।[२६]

महेन्द्रसूरि

ये हेमचन्द्र के शिष्यों में एक थे इन्होंने अपने गुरु द्वारा रचित **अनेकार्थसंग्रहकोश** पर उनके निधन के पश्चात् उन्हीं के नाम पर **अनेकार्थकैरवाकरकौमुदी** नामक टीका की रचना की। इनके द्वारा रचित अन्य किसी कृति का उल्लेख

नहीं मिलता है। हेमचन्द्र के अन्य शिष्यों वर्धमानगणि और रेवचन्द्र की कृतियों का पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है। इनके अन्य शिष्यों के किन्हीं कृतियों की सूचना नहीं मिलती।

पूर्वतल्लगच्छ के आदिम आचार्य कौन थे, यह गच्छ कब अस्तित्व में आया; यद्यपि इस बारे में कोई साक्ष्य नहीं मिलता है। फिर भी ईस्वी सन् की १०वीं शताब्दी के अन्तिमचरण में इस गच्छ का अस्तित्व प्रमाणित होता है। हेमचन्द्र की बहुमुखी प्रतिभा के कारण जयसिंह सिद्धराज और कुमारपाल के समय यह गच्छ गच्छविशेष की संकीर्णता से ऊपर उठकर श्वेताम्बर श्रमण संघ का पर्याय बन गया। हेमचन्द्र के मृत्योपरान्त उनकी शिष्य मण्डली में उत्पन्न कलह तथा इसी समय कुमारपाल की मृत्यु के बाद जैनों के प्रति उत्पन्न राजकीय कोप से इस गच्छ का प्रभाव समाप्तप्राय हो गया। यद्यपि वि० सं० की १३वीं शती के अन्त तक इस गच्छ का स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध होता है, फिर भी इस समय तक यह अपने पूर्व गौरवमय स्थिति से निश्चय ही च्युत हो चुका था, किन्तु जनमानस में हेमचन्द का आज भी वही आदरपूर्ण स्थान है जो जयसिंह और कुमारपाल के समय में था।●

संदर्भ

१. Dasharatha Sharma—Early Chauhan. Dynasties New Delhi 1959 A. D. P-24
२. आसीच्चन्द्रकुलाम्बरैकशशिनि श्रीपूर्णतल्लीयके
गच्छे दुर्द्धरशीलधारणसहैः सम्पूरिते संयतैः।
निःसम्बन्धविहारहरिचरितश्चञ्चच्चरित्रः शुचिः
श्रीसूरिर्मलवर्जितोर्जितमतिश्चार्वाऽऽम्रदेवाभिधः ॥१॥
तच्छिष्य श्रीदत्तो गणिरभवत् सर्वसत्त्वसमचित्तः।
नरनायकादिविम्तः, सद्वृत्तो वित्तनिर्मुक्तः ॥२॥
सूरिस्ततोऽभूद् गुणरत्नसिन्धुः, श्रीमान् यशभद्र इतीद्धसंज्ञः।
विद्वान् क्षितीशैर्नतपादपद्मः, सन्नैष्ठिको निर्मलशीलधारी ॥३॥
नीरोगोऽपि विधानतो निजतत्तं (नुं) संलिख्य सर्वादरात्,
सर्वाहारविवर्जनादनशनं कृत्वोज्जयन्ते गिरौ।
कालेऽप्यत्र कलौ त्रयोदशदिनान्याश्चर्यहेतुर्जने,
शस्यं पूर्वमुनीश्वरीयचरितं सन्दर्शयामास यः ॥४॥
तच्छिष्यो भूरिबुद्धिर्मुनिवरनिकरैः सेवितः सर्वकालं,
सच्चास्प्रार्थप्रबन्ध-प्रवरवितरणाल्लब्धविद्वत्सुकीर्तिः।

येनेदं स्थानकानां विरचितमनघं सूत्रमत्यन्तरम्यं,
श्रीमत्प्रद्युम्नसूरिर्जितमदनभटोऽभूत् सतामग्रगामी ॥५॥
राद्धान्त-तर्क-साहित्य-शब्दशास्त्रविशारदः ।
निरालम्बविहारीच, यः शमाम्बुमहोदधिः ॥६॥
सिद्धान्तदुर्गम महोदधिपारगामी,
कन्दर्पदर्पदलनोऽनघकीर्तियुक्तः ।
दान्ताऽतिदुर्दमहृयषीकमहातुरंगः,
श्रीमांस्ततः समभवद् गुणसेनसूरिः ॥७॥
जगत्यपि कृताश्चर्यं, सुराणामपि दुर्लभम् ।
निशाकरकराकारं, चारित्रं यस्य राजते ॥८॥
तच्चरणरेणुकल्पः सूरिश्रीदेवचन्द्रसंज्ञोऽभूत् ।
तच्छिष्यों गुरुभक्तस्तद्विधधिषणो विनिर्मुक्तः ॥९॥
श्रीमद्भयदेवाभिधसुरेर्यो लघुसहोदरः स इह ।
स्थानकवृत्ति चक्रे सूरिः श्रीदेवचन्द्राख्य ॥१०॥
मतिविकलेनापि मया, गुरुभक्तिप्रेरितेन रचितेयम् ।
तस्मादियं विशोध्या, विद्वद्भिर्मयि कृपां कृत्वा ॥११॥
आवश्यक-सत्पुस्तकलेखन-जिनवन्दनाऽर्चनोद्युक्तः ।
शय्यादानादिरतः, समभूदिह वीहकः श्राद्धः ॥१२॥
तद्गुणगणानुयायी, श्रीवत्सस्तत्सुतः समुत्पन्नः ।
तद्वसतावधिवसता, रचितेयं स्तम्भतीर्थपुरे ॥१३॥
रस-युग-रुद्रै (११४६) वीर्तेविक्रम संवत्सरात् समाप्तेयम् ।
फाल्गुणसितपञ्चम्यां, गुरुवारे प्रथमनक्षत्रे ॥१४॥
अणहिलपाटकनगरे, वृत्तिरियं सोधितां सुविद्वद्भि ।
श्रीशीलभद्रप्रमुखैराचार्यैः शास्त्रतत्त्वज्ञैः ॥१५॥
साहाय्यमत्रविहितं, निजशिष्याशोकचन्द्रगणिनाम्ना ।
प्रथमप्रतिमालिखता, विश्रामविवर्जितेन भृशम् ॥१६॥
प्रत्यक्षरं निरुप्यास्या ग्रन्थमानं बिनिश्चितम् ।
अनुष्टुभां सहस्राणि सम्पूर्णानि त्रयोदश ॥१७॥

मूलशुद्धिप्रकरणवृत्ति की प्रशस्ति

श्री जितेन्द्र बी० शाह, नियामक, शारदाबेन चिमन भाई एजुकेशनल रिसर्च सेन्टर, अहमदाबाद के सौजन्य से उक्त प्रशस्ति प्राप्त हुई है, जिसके लिये लेखक उनका हृदय से आभारी है ।

श्री अम्बालाल पी० शाह द्वारा सम्पादित **कालिकाचार्यकथासंग्रह** [अहमदाबाद १९४९ ई०] के पृष्ठ २३-२४ पर भी उक्त प्रशस्ति दी गई है।

३. C. D. Dalal—A Descriptive Catalogue of Manuscripts In the Jain Bhandars at Pattan Vol I,
G. O. S. No. LXXVI, Baroda 1937 A. D. PP. 335-343

४. **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित** जैन धर्मप्रसारक सभा, भावनगर से ई० सन् १९०६ १९१३ में प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थ का १०वां पर्व **महावीरचरित** के रूप में है जो वि० सं० १९६५ / ई० सन् १९०९ में प्रकाशित हुआ है। कृति के अन्त में ग्रन्थकार ने २१ श्लोकों की प्रशस्ति दी है। इसका एच० जॉनसन द्वारा किया गया आंग्लभाषानुवाद गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला के अन्तर्गत ६ भागों में ई० सन् १९३१-६ में प्रकाशित हो चुका है।

५. मायापरैर्हतपरैः स्फुटमिन्द्रकल्पैस्तीकल्पकुविकल्पशतैर्विलुप्त।
दृष्टिर्यदीरितपदत्रयमात्रमन्त्रात् सम्यक्त्वमति भविनां जयताज्जिनोऽसौ ॥१॥
कुदृष्टो यद्वशतः सुदृष्टभावं ययुस्त्यक्तविरोधसंगाः।
शिवं शिवं तज्जिनशासनं तस्तनोतु निःशेषसमृद्धिहेतुः ॥२॥
श्रीमांश्चान्द्रकुलेऽभवद्गुणनिधिः प्रद्युम्नसूरिप्रभुर्बन्धुर्यस्य
स सिद्धहेमविधये श्रीहेमसूरिर्विधिः।
तच्छिष्यावयवोऽत्र सूरिरजनि श्रीचन्द्रसेनाभिधस्तेनेदं
रचितं प्रकाशपदवीं नेयं पुनः साधुभि ॥३॥
कृत्वा प्रकरणमेतद् यत्कुशलमिहार्जितं मया किञ्चित्।
तस्मात्तत्त्वैकरुचिर्भवतु जनः सिद्धसद्वोधः ॥४॥
द्वादशवर्षशतेषु श्रीविक्रमतो गतेषू मुनिभिः।
चैत्रे सम्पन्नमिदं साहाय्यं चात्र में नेमेः ॥५॥
इति श्रीसिद्धहेमगुरुभ्रातृश्रीप्रद्युम्नसूरिशिष्य श्रीचन्द्रसेनाचार्यरचित स्वोपज्ञ श्री उत्पादादिसिद्धिद्वात्रिंशिकाविवरणं समाप्तं।
यह कृति ऋषभदेव केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम द्वारा वि० सं० १९९३ / ई० सन् १९३६ में प्रकाशित हो चुकी है।

६. भोगीलाल सांडेसरा—**हेमचन्द्राचार्य का शिष्य मण्डल** जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, वाराणसी, १९५१ ई०, पृष्ठ ३२०
एम० ए० ढांकी—"कवि रामचन्द्र अने कवि सागरचन्द्र" **सम्बोधि** वर्ष ११ अंक १-४ अहमदावाद, १९८५ ई० पृ० ६८-८०।

७. सांडेसरा, पूर्वोक्त, पृष्ठ १९

८. J. Buhler—The Life of Hemacandracarya Translated from Original German By Manilal patel, Singhi Jaina Series No. 11, Shantiniketan, 1936 A. D.

९. सांडेसरा पूर्वोक्त

१०. सूरिश्चन्द्रकुलामलैकतिलकश्चारित्ररत्नाम्बुधिः
सारेलाघवमादधाति च गिरैर्यो वर्धमानाभिधः।
तच्छिष्यावयवः स सूरिरभवच्छ्रीशान्तिनामा कृता
येनेयं विवृतिर्विचारकलिका नामा स्मृताण [स्मनः] ॥१॥
अवज्ञानं हीने समधिकगुणे द्वेषमधिकम्
समाने संस्पर्धां गुणवति गुणी यत्र कुरुते।
तदस्मिन् संसारे विरलसुजनेऽपास्तविषया
प्रतिष्ठाशा शास्त्रे तदपि च भवेत् कृत्यकरणम् ॥२॥
पं० दलसुख मालवणिया—संपा० **न्यायावतारवार्तिक-वृत्ति** सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २०, बम्बई वि० सं० २००५, प्रशस्ति पृष्ठ १२२।

११. श्रीशांतिसूरिरिह श्रीमति पूर्णतले (ल्ले) गच्छे वरो मतिमतां बहुशास्प्रवेत्ता।
तेनामलं विरचितं बहुधा विमृश्य संक्षेपतो वरमिदं बुध ! टिप्पितं भोः ॥
इदं विधाय यत् पुण्यं निर्मलं समुपार्जितं।
तेन भव्या दिवं लब्ध्वा पश्चात् निर्वांतु मानवाः ॥
शांत्याचार्यकृत **तिलकमंजरीटिप्पण** की प्रशस्ति दलाल, पूर्वोक्त, पृष्ठ ८७।
मेघाभ्युदयकाव्यटिप्पन की प्रशस्ति में भी उन्होंने अपना गच्छ पूर्णतल्ल ही बतलाया है :
श्रीपूर्णतल्लगच्छसम्बन्धी श्रीवर्धमानाचार्यस्वपदस्थापित श्रीशांतिसूरिविरचितां मेघाभ्युदयकाव्यवृत्तिः समाप्ताः ॥
Muni Punya Vijaya—Ed. New Catalogue of Sanskrit and Prahrit Manuscripts : Jesalmer Collection L. D. Series No. 36, Ahmedabad 1972 A. D. P-149

१२. U. P. Shah—"A Forgotten" Joural of the Asiatic Society of Bombay, Vol 30, Part I, 1955 A. D. pp. 113

१३. H. d. Velonbar—Jinaratnabasu Government Oriental Series Class C No-4 Bhandarkar Oriental Research Institute, Poone-1944 Ad. P-312-13
मूलशुद्धिप्रकरण के चार स्थानक देवचन्द्रसूरि कृत वृत्ति के साथ श्रीअमृतलाल मोहनलाल भोजक द्वारा सम्पादित और प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी अहमदाबाद द्वारा ई० सन् १९७१ में प्रकाशित हो चुके हैं। शेष भाग अभी भी अप्रकाशित ही है।

१४. Muni Punya Vijaya—A New Catulogue of Sanskrit and Prakrit Mss : Jesalmer Collection P. 60

१५. Muni Punya Vijaya—Ed. Catalogue of Palm-Leat Mss in The Shantinath Jain Bhandar, Cambay G. O. S. No. 135 149, Baroda 1961-66 Ad. pp. 158, 163, 168, 180.

१६. द्रष्टव्य सन्दर्भ संखया २

१७. गुलावचन्द्र चौधरी—जैनसाहित्य का बृहद्इतिहास भाग-६ पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २०, वाराणसी १९७३ ई०, पृष्ठ ८६

१८. एक्कारसहिं सएहिं विक्कमसंवच्छराउ सट्ठेहिं ।
रइयं खंभाइत्थे रज्जे जयसिंधरायस्स ।।

C. O. dalal—A descriptive Catalogue of Mss In the Jaina Bhandars at Pattan P. 339

शांतिनाथचरित अद्यावधि अप्रकाशित है ।

१९. बुहलर, पूर्वोक्त

२०. R. C. Parikha—An Introduction of Kavyanusasana Vol II Part I, Bombay 1938, pp. I cccxxx वि० भा० मुसलगांवकर—आचार्य हेमचन्द्र भोपाल, १९७१ ई० पृष्ठ ५ और आगे ।

२१. मोतीचन्द गिरधरलाल कापड़िया—"श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यनी कृतियों" श्रीहेम सारस्वत सत्र, पाटण, अहेवाल अने निबन्ध संग्रह बम्बई, १९४१ ई० पृ० १७७-१९१

पं० अम्बालाल शाह—जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग-४, पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रंथमाला, ग्रन्थांक १४ वाराणसी १९६९ ई०, पृ० २८-३०

२२. जी० के० श्री गोंडेकर एवं लालचन्द्र भगवानदास गांधी—
संपा० नलविलास बड़ोदरा १९२६ ई० प्रस्तावना, पृष्ठ २३ और आगे

२३. वही पृष्ठ ३२

२४. सांडेसरा, पूर्वोक्त, पृष्ठ ७-८

२५. लालचन्द्र भगवानदास गांधी—"उदयनविहार" जैनसत्यप्रकाश वर्ष १९ पृ० ७५, १०७, १५७, १७४, २२२ आदि

२६. ढांकी, पूर्वोक्त, पृष्ठ ६८-७३ ।

★●★

राजा-सम्प्रति

तीसरा परिच्छेद

पूर्वानुवृत्ति

नन्दनाचार्य

"गुरुजी ! आपको सुख साता तो है नँ ?"

"हाँ; आपको देखकर तो विशेष रूप से, महारानीजी !"

"इधर कई दिनों से मैं आपके दर्शनार्थ आने के लिये आतुर थी; किन्तु आना नहीं हो पाता था। फिर भी आज तो मैं चाहकर ही आपके दर्शनार्थ आयी हूँ।" आगन्तुक रमणी ने कहा।

"गुरु दर्शन के लिए तो अवश्य आना ही चाहिए। इससे सत्संग का लाभ होने के साथ ही पाप भी नष्ट होते हैं, यह तो आपको विदित ही है। शास्त्र में तो देवता से भी गुरु की महिमा अधिक वर्णन की गई है।"

"सो किसलिये ? गुरु से तो देवता ही बड़े माने जाते हैं। तो फिर गुरु को देवता से अधिक कहने के लिए क्या कारण हो सकता है ?" आतुर हृदय से उस रमणी ने पूछा।

"कारण यही है कि देवता तो आज मनुष्य से बहुत दूर हो गये हैं। इसीलिए संसार के अज्ञानी जीवों को, उन देवताओं के स्वरूप का परिचय कराने वाले हम जैसे महान् गुरु ही हो सकते हैं।

यदि हम जैसे गुरु जगत में विद्यमान न होते, तो आज समग्र भारत में जिस बौद्धधर्म का प्रसार हो रहा है, वह न हो पाता !" उनके ये उद्गार कुछ गर्वयुक्त अवश्य थे। फिर भी उनके मुख पर सन्तोष और प्रसन्नता की भावना झलक रही थी।

"सत्य है गुरुदेव ! आप जैसे समर्थ पुरुषों का ही यह प्रभाव है कि मगधराज जैसे सम्राट् आज आपके भक्त हैं।" उस महिला ने कहा।

"हमारा धर्म ही ऐसा पवित्र और शुद्ध है उसका स्वरूप जानते ही सहज भाव से उसे पालन करने की अभिलाषा हो जाती है। सम्राट् अशोक ने हमारे

धर्म का पालन करके उसकी शोभा बढ़ाई है और आज हमारे हजारों भिक्षुओं ने देश-विदेश में विचर कर बौद्ध धर्म की महत्ता प्रस्थापित की है।"

"आप समर्थ हैं। मेरे पति जैसे मगध सम्राट् के भी आप माननीय एवं पूज्य गुरु हैं. इसीलिए मैं आपसे आशीर्वाद पाने को यहाँ आई हूँ।"

बौद्ध गुरु चौंक पड़े। "महारानीजी ! आपको ऐसी किस वस्तु की न्यूनता हो गई है, जिसके लिए कि आप मेरे पास आशीर्वाद लेने आई हैं ? हे गुरुवर्य आप मुझे आशीर्वाद दीजिये ताकि मेरा संकट निवारण हो।"

कहिये, आपकी क्या इच्छा है ? ऐसी कौन सी वासना अधूरी है; कि जिसे आप पूर्ण करना चाहती हैं ?" बौद्धाचार्य ने पूछा।

"महाराज ! मुझे आशीर्वाद दीजिये कि जिस प्रकार मैं राजरानी हूँ उसी प्रकार मैं राजमाता भी बन जाऊँ !" कहने वाली मगधराज की पटरानी तिष्यरक्षिता थी।

सुनने वाले उस समय के प्रसिद्ध बौद्धाचार्य नन्दनाचार्य थे। उपगुप्त के उपदेश से उनके अहिंसा के तत्व से प्रभावित होकर महान् अशोक ने बौद्धधर्म स्वीकार किया था और उसके बाद रानियाँ भी बौद्धगुरु की अनन्य भक्त बन गई थीं। उपगुप्त का स्थान इस समय नन्दन नाम के भिक्षुक के हाथ में था।

किसी विशेष विचार के उत्पन्न होने से ही पटरानी तिष्यरक्षिता अपने गुरु नन्दनाचार्य से एकान्त में परामर्श करने के लिये बौद्धमठ में आई थी। उसके साथ पाँच सात दासियाँ भी थीं। इस प्रकार गुरु को वन्दन करके उसने अन्त में उनसे राजमाता बनने का आशीर्वाद माँगा।

उस समय बौद्धाचार्य एकान्त में बैठे हुए थे। उनके शिष्य बाहर बैठे हुए अध्ययन कर रहे थे। अतएव अवसर साधकर कहा हुआ रानी का वचन सुनते ही नन्दन का हृदय एकदम चौंक पड़ा। किन्तु फिर भी उसने गम्भीरता के साथ रानी से कहा:—महारानीजी ! इसमें नयी बात ही क्या है ? आज जिस प्रकार आप महाराज की प्रियतमा हैं उसी प्रकार एक दिन राजमाता भी अवश्य बन जाएँगी !"

"आप किस आधार पर ऐसा कहते हैं ? आपको पता है कि महाराज ने युवराज पद तो उस कुणाल को देकर राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया है।"

"इससे क्या हुआ ? वह तो समय अपना काम कर ही रहा है। भविष्य की बातों को हम अल्पबुद्धिवाले मनुष्य कैसे समझ सकते हैं ?"

"प्रभु ! आप कुछ भविष्य कथन कर सकते हैं अथवा आप..." महारानी तिष्यरक्षिता बोलते बोलते रुक गई ।

किन्तु रानी के कहने का आशय बौद्धाचार्य समझ गया । फिर भी उसने अनजान की तरह पूछा, "कहिये, आप क्या कहना चाहती हैं ?

"जी, वह एकान्त में कहने की निजी बात है ! यदि आप वह काम कर सकें, तो मैं आपके सामने उसे प्रकट करने को उद्यत् हूँ । रानी ने उत्तर दिया ।

"अवश्य कहिये ! आपकी क्या इच्छा है ? आपका चाहे जैसा भी दुष्कर कार्य होगा, मैं अवश्य कर दूँगा ।"

रानी ने श्यामा के सिवाय अन्य सभी दासियों को बाहर सावधानी रखने के लिये भेजकर श्यामा को द्वार पर खड़ा कर दिया और धीरे से कहा :— "महाराज ! आप ऐसा कोई काम कर सकते हैं, जिससे कि कुणाल का जीवन समाप्त हो जाय ! और मेरा पुत्र युवराज बन सके !

किन्तु, देखिये रानीजी, आपका कथन यथार्थ है और आपका काम भी हो जायगा, किन्तु एकदम नहीं । ऐसे कामों में धीरे-धीरे ही सफलता प्राप्त होती है ।"

"अच्छी बात है ! धीरे-धीरे ही क्यों न हो; किन्तु वह विषैला कांटा जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया जाना चाहिए । किसी ऐसे मारण-उच्चाटन मन्त्र का प्रयोग कीजिये कि वह फिरसे पाटलीपुत्र को देख ही न सके ।"

"रानीजी ! इसकी सीधी चाबी-कूंजी तो आपके ही पास मौजूद है । आप मोह द्वारा सम्राट को वश में करके अपना काम क्यों नहीं बना लेती ? ऐसा सुन्दर स्परूप और वाणी का चातुर्य रूपी उपहार प्राप्त करके भी आप इनका उपयोग क्यों नहीं करतीं ?"

"भगवन् ! मेरा यह रूप और कला महाराज को अवश्य रिझा सकते है, किन्तु मेरा कार्य नहीं कर सकते ! इसीलिये मैं आपके पास आई हूँ । आपकी शरणागत हुई हूँ । मैं महाराज को समझा-समझाकर हार गई ! अब तो आप ही उन्हें समझा सकते हैं । मैं तो समझती हूं, उन्हें समझा सकना ही अत्यन्त कठिन कार्य है ।"

"आपके रूप गुण पर मुग्ध होकर भी यदि राजा पागल न हो सका, तब तो मेरे द्वारा भी उसे समझा सकना कठिन ही है । फिर भी आपके पुत्र महेंद्र के लिए तो मैं अवश्य ही प्रयत्न करूँगा और साथ ही राजा के विचार बदलने का भी उपाय सोचूँगा ।"

"महेंद्र आपका ही है, ऐसा समझ कर आप प्रयत्न करेंगे। मेरा यह इतना कार्य तो आपको अवश्य करना ही होगा।" महारानी ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"जहाँ तक होगा अवश्य करूँगा; किन्तु आप भी बीच-बीच में आती-जाती रहें।" "और आप भी हमें दर्शन देने के लिए महल में अवश्य पधारते रहें।" राज सभा में तो आप प्रायः पधारते ही हैं। अतः उपदेश देने के बहाने अन्तःपुर में भी पधारने की कृपा किया करें तो कितना अच्छा हो! इस प्रकार आपके दर्शन और उपदेशामृत का लाभ तो हमें होता रहे!"

"अवश्य! आपका कथन यथार्थ है; महारानीजी? उन परम कृपालु भगवान बुद्धदेव पर विश्वास रखिये! उनकी कृपा से आपका कार्य शीघ्र ही सिद्ध होगा।"

"तो आपको भी अवश्य लाभ होगा। वर्तमान समय की अपेक्षा मेरा महेंद्र राजा बन जाने पर अपना धर्म अधिक उन्नति कर सकेगा। बौद्ध धर्म की दिग्विजय हो सकेगी।"

महारानी के वचन सुनकर उस धर्माभिमानी बौद्धाचार्य के मुँह में पानी भर आया। "अवश्य! धर्म की विजय के लिए हम चाहे सो करने को आतुर रहते हैं। बौद्ध धर्म की विजयध्वजा जगत् की चारों दिशाओं में फहराती हुई देखने को हम बड़े उत्सुक हैं।"

"आप की कृपा से मेरा महेंद्र यदि राजा बन सका तो मैं भी आपकी अनन्य भक्त बन जाऊँगी। रात-दिन आपकी चरणसेवा करके मैं अपना जन्म सफल करूँगी। अहा! आपके इस उपकार का बदला मैं कैसे चुका सकूँगी?" रानी ने बौद्ध गुरु के प्रति आभार प्रकट किया।

"आपका कार्य सिद्ध हो जाने पर तो आप चाहें जिस प्रकार से बदला चुका सकती है। आप बौद्ध धर्म की अनन्य भक्त बनकर उसकी सेवा कर सकती है। यह बदला भी कुछ ऐसा वैसा नहीं है।"

नन्दन और तिष्यरक्षिताका वार्तालाप चलते हुए कितना समय बीत गया, इसका उन्हें भान तक नहीं रहा। अतएव द्वार पर खड़ी श्यामा ने आकर कहा "महारानीजी! समय बहुत हो गया है; इसलिए हमें अब लौट-चलना चाहिए।"

"हाँ श्यामा! हमें अब शीघ्रता से चले जाना ही उचित है। तेरा कहना ठीक है।" इस प्रकार गुप्त मन्त्रणा से निवृत्त होते ही महारानी ने श्यामा से

कहा :—"जा श्यामा ! सारथी से रथ तैयार करने के लिए कह दे; तब तक मैं भी वहाँ आ पहुँचती हूँ ।"

"किन्तु आप शीघ्र ही पधारियेगा।" यों कहती हुई श्यामा वहाँ से चली गई ।

रानी ने बारम्बार हँसते हुए प्रसन्नचित से अपने कार्य की पूर्ति के लिए नन्दनाचार्य से अनुरोध किया, और वह भी मधुर दृष्टि से उस सुन्दर मुखमण्डल को देखता रहा । दोनों एक दूसरे के स्वार्थ में डूब रहे थे, किन्तु दोनों के विचार जुदे-जुदे थे । संसाररूपी शतरंज पर दोनों ही न जाने कौन सा दाँव चाल खेल रहे थे ।

थोड़ी ही देर में महारानीजी बात करती हुई बाहर आकर रथ पर बैठ गईं । किन्तु रथ में बैठे बैठे भी उन्होंने गुरु को प्रणाम किया । देखते ही देखते रथ वहाँ से दृष्टि ओट हो गया । तब तक बौद्धाचार्य की आँखें उधर ही लगी रहीं । इसके बाद उसने मन में सोचा—"अहा ! यह इस युग की कितनी सुन्दर महिला है ?" ●

[अगले अंक में]

सौजन्य से :

BOYD SMITHS PVT. LTD.

B-3/5, GILLANDAR HOUSE

8, Netaji Subhas Road,

Calcutta-700 001

Phone Office : 220-8105/2139

Resi. : 244-0629/0319

क्या मांसाहार मानवीय आहार है ?

चंचलमल चौरड़िया

प्रस्तुत लेख में लेखक ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानवीय आहार की व्याख्या की है।

मानव कौन ?

मनुष्य दुनिया का सर्वश्रेष्ठ विकासशील प्राणी है। जिसको पाँचों इन्द्रियाँ (आंख, कान, नाक, मुँह, त्वचा) के साथ मन भी प्राप्त है। मनुष्य में ही बोलने, अपने विचारों को व्यवस्थित रूप से अभिव्यक्त करने तथा वर्तमान, भूत एवं भविष्य के बारे में जानने, समझने एवं अपना भला बुरा सोचने की क्षमता है। अतः उसमें कुछ विशिष्ट गुण होते हैं। जिससे उसमें नर से नारायण, भक्त से भगवान और आत्मा को परमात्मा बनाने का सामर्थ्य है। दया, करुणा, अनुकम्पा, प्रेम, विनय ज्ञानोपर्जन, सेवा, संवेदना स्नेह सहानुभूति, संतोष सरलता, सद्‌भावना आदि मानवीय गुण है। इन गुणों वाला ही सच्चा मानव है। इन गुणों के विपरीत क्रूरता, निर्दयता बर्बरता छल, कपट, माया विश्वास-घात दूसरों को कष्ट पहुंचा अपना स्वार्थ या अहम् पोषण करने वाला तो मानव रूप में पशु के समान है। उसकी क्रियाओं और पशु की क्रियाओं में विशेष अन्तर नहीं। अतः जो आहार मानवीय गुणों में अभिवृद्धि करे वहीं मानवीय आहार होता है और जो मानवीय गुणों का नाश करे वह मानवीय आहार नहीं हो सकता ?

मांसाहार क्यों ?

प्रत्येक व्यक्ति का प्रयास जीवन में शांति, सुख, स्वस्थता, आनन्द, प्रसन्नता की प्राप्ति करना होता है। जिस कार्य में उसे लाभ होता है, उसको करने की उसकी भावना होती है। कोई भी व्यक्ति ऐसा आचरण नहीं करना चाहता जिससे उसको हानि, तनाव, दुःख आदि हो। प्रश्न खड़ा होता है कि मनुष्य मांसाहार क्यों करता है ? क्या मांसाहार स्वस्थ्य आर्थिक, मानवीय, पर्यावरण प्रकृति व कानून की दृष्टि से उत्तम है अथवा उनका सोच, धारणायें, मान्यतायें विज्ञापन पूर्वाग्रह एवं अन्धानुकरण से प्रेरित है ? क्या मांसाहारी मांसाहार के अच्छे बुरे परिणामों के बारे में सजग है ? प्रकृति में सभी जीव जीना चाहते है कोई मरना नहीं चाहता। मनुष्य जैसा बुद्धिमान प्राणी मांसाहार के लिये उन बेजुबान निराश्रित, मूक प्राणियों का वध करे यह कहां तक उचित है ? जो प्राण हम दे नहीं सकते उनको लेने का हमें किसने अधिकार दे दिया ? यह मानव के

स्वार्थीपन का प्रतीक है। ताकत का दुरुपयोग है। पागलपन का परिचायक है हिंसक मनोवृति मानवता पर कलंक है। इसीलिये महापुरुषों ने स्पष्ट कहा है—

अगर आराम चाहते हो तो नसीहत ये हमारी है।
किसी का मत दुखाओ दिल, सभी को जान प्यारी है ।।

अज्ञान दुःख का मूल

अज्ञान सभी दुखों का मूल है। अज्ञान के परिणामस्वरूप ही मानव सद् चिन्तन से परे हो रहा है। करणीय-अकरणीय, खाद्य-अखाद्य का विवेक भूल रहा है। अमूल्य जीवन का उद्देश्य मात्र खाओ, पीओ और मोज करो तक सीमित रख केवल उसका अवमूल्यन कर रहा है अपनी क्षमताओं का दुरूपयोग कर रहा है। पूर्व उपार्जित पुण्यों के कारण पद, पैसा और सुख सुविधा प्राप्ति की अन्धी दौड़ में प्राणी जगत के साथ अत्याचार, दुर्व्यवहार करते तनिक भी हिचकिचाहट नहीं हो रही है। अपने आपको सर्वश्रेष्ठ, सर्वशक्तिमान, सभ्य प्रगतिशील समझने का भ्रम हो जाने से स्वच्छन्द, मायावी, स्वार्थी, घमण्डी, हिंसक क्रूर, निर्दयी आचरण करते तनिक भी संकोच नहीं कर रहा है। स्वयम् को तो सुई अथवा पिन की चुभन भी सहन नहीं होती परन्तु स्वाद लोलुपता के कारण मांसाहार करते करूणा, दया, प्रेम परोपकार, सहयोग, संवेदना जैसे मानवीय गुणों का निःसंकोच त्याग कर रहा है। लाखों रुपयों में भी अपने शरीर के किसी अंग को न बेचने वाला अपने स्वाद पूर्ति के लिये बेचारे, बेजुबान, बेवश बेसहारा प्राणी जिनका रोम-रोम मनुष्य जाति के लिये सर्मपित है। जिसे खिलाना चाहिये उसे ही खाया जा रहा है। ऐसा मानव आकृति से भले ही मनुष्य हो, परन्तु प्रवृति से तो वह राक्षसों को भी लजाने वाला बनता जा रहा है। इसीलिए किसी कवि ने चुनौती के स्वरों में कहा है।—

मत सता जालिम किसी को, मत किसी की हाय ले।
दिल के दुःख जाने से जालिम, खाक में मिल जाएगा ।।

मांसाहारियों की श्रेणियां

कुछ व्यक्ति रोजना मांसाहार करते हैं तो कुछ सप्ताह अथवा महीने में कभी-कभी। कोई भी व्यक्ति पूर्णतः मांसाहारी तो हो ही नहीं सकता। मांसाहार के साथ शाकाहार तो उनको लेना ही पड़ता है। मांसाहारी परिवारों में उत्पन्न होने से उनमें मांसाहार की आदत सहज ही पड़ जाती है। क्या खाना ? क्या नहीं खाना ? क्यों खाना ? क्यों नहीं खाना ? उस पर उसका कोई चिन्तन नहीं चलता ? जैसा चलता आया है, उसका ही वे अन्धानुकरण करते हैं। उनके संस्कार इतने परिपक्व हो जाते हैं कि मांसाहार के दुष्प्रभावों को जानते, मानते हुए भीं मनोबल नहीं होने से मांसाहार नहीं छोड़ सकते। बहुत

से व्यक्ति जन्म एवं शाकाहार के संस्कारों में पले होने के बावजूद मांसाहार के दुष्प्रभावों से अपरिचित होने के कारण, विवेक शून्य चिन्तन के परिणामस्वरूप बुराई को बुरा न समझने के कारण, मांसाहारियों की संगति में रहने से होटलों में जाकर मांसाहार लेना प्रारम्भ कर देते हैं। भारत में बढ़ते मांसाहार में ऐसे लोगों की ही संख्या ज्यादा है। अधिकांश व्यक्तियों को इस बात का पता ही नहीं चलता कि मांसाहार कैसे प्राप्त होता है ? यदि कोई व्यक्ति किसी का क्रूरता, बेरहमी से वध होता देख ले तो उसका कलेजा दहल जायेगा और वह मांसाहार कभी नहीं करना चाहेगा। कारण चाहे जो हो, मांसाहार मानव का आहार नहीं है।

आधुनिक विज्ञान मानव को बन्दर की औलाद के रूप में मानता है। परन्तु बन्दर तो पूर्णतः शाकाहारी है। अतः प्रत्येक तथ्य को वैज्ञानिक आधार पर ही स्वीकार करने वालों को इस बात को मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये कि मानव मूलतः शाकाहारी प्राणी ही है।

माँसाहार और स्वास्थ्य

१. आधि (मानसिक), व्याधि (शारीरिक) उपाधि (आत्मिक) संतुलन से ही समाधि, शांति, सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। परन्तु मांसाहार इस संतुलन को बिगाड़ता है, अतः त्याज्य है।

२. क्या जिन जानवरों को मांसाहार के लिये मारा जाता है। उन पशुओं का स्वास्थ्य परीक्षण होता है ? कहीं वे असाध्य संक्रामक रोगों से पीड़ित तो नहीं होते ? कहीं मांस के साथ जानवरों के रोग एवं मवाद तो खाने वालों के शरीर में प्रवेश नहीं करते ? क्या जहर उबालने से अमृत बन जाता है ?

३. क्या जानवर हँसते-हँसते इच्छा से मरता है ? जिस निर्दयता क्रूरता बेरहमी से उनको मारा जाता है। उस वातावरण से उत्पन्न तनाव, भय, घबराहट, घृणा, छटपटाहट, बदला लेने की भावना आदि से पशुओं का मांस विषैला बन जाता है। ऐसा मांस खाने वाले के हृदय से दया, करुणा, संवेदना स्नेह, सहानुभूति, परोपकार, सेवा जैसे मानवीय गुणों का हनन हो जाता है। साथ ही मांसाहार से सैकड़ों रोग पैदा होते हैं एवं बढ़ते हैं। इसीलिए अमेरिकी सरकार की दवाईयों की नीति निर्धारण सम्बन्धी समिति के चिकित्सकों ने सन् १९९१ में सरकार को जनता के योग्य जो आहार की सूची भेजी उसमें अण्डा, मछली और मांसाहार को बहिष्कृत किया गया है।

४. चेतनशील जीवों में मृत्यु के पश्चात् हानिकारक कीटाणुओं की उत्पति अधिक एवं शीघ्र होती है। इस कारण मृत्यु के पश्चात् मृतक को जल्दी से जल्दी जलाया अथवा दफनाया जाता है। शवयात्रा में भाग लेने वाले भी

अपने शरीर की शुद्धि हेतु स्नान करते हैं क्या पशुओं का वध करते ही उनके मांस का भक्षण कर लिया जाता है ? अगर नहीं तो उसमें रोग के कीटाणु उत्पन्न हो आसपास के वातावरण को तो दूषित नहीं करते ? मानव का पेट क्या कचरा पेटी है कि उसमें जब चाहो, जो चाहो, जितना चाहो कुछ भी डाल दें ? क्या मांसाहारियों का पेट मृत जानवरों का कब्रिस्तान तो नहीं है ?

मनुष्य प्रकृति से शाकाहारी है, मांसाहार उसे अनुकूल नहीं।
पशु भी मानव जैसे प्राणी, वे मेवा फल फूल नहीं ।।

५. किसी भी रोगी को जब रक्त की आवश्यकता होती है तब डाक्टर उस रोगी को उसके ग्रुप का ही रक्त क्यों देते हैं ? क्या मांसाहारी ऐसा दावा कर सकते हैं, कि मांस के साथ जो खून का अंश पेट में जायेगा वह उनके ग्रुप का ही है ? क्या विपरीत गुण वाला रक्त एवं मांस शरीर में हानि तो नहीं पहुंचावेंगे ? इसीलिये जिन शाकाहारियों को उपचार हेतु मांसाहारियों का रक्त दिया जाता है उनकी तामसिक प्रवृतियां बढ़ जाती है।

६. मनुष्य की शारीरिक रचना जैसे आँखों की पुतलियाँ, गर्दन एवं आँखों की लम्बाई का अनुपात, रक्त की रासायनिक स्थिति, पसीना होने की प्रक्रिया, रात में देखने की शक्ति, पानी पीने का ढंग, जबड़ों के हलन चलन का तरीका, नाखून, दांत और दाढों की रचना मांसाहारी जानवरों से भिन्न शाकाहारी जानवरों से मिलती जुलती है। ब्रिटेन में शाकाहारी गायों को धोखे से मांसाहार कराने के दुष्परिणामों से सारा विश्व परिचित हो गया है। यह गाय का पागलपन है अथवा मानव का पागलपन समझाने की आवश्यकता नहीं जिस प्रकार पेट्रोल की गाड़ी लम्बे समय तक केरोसिन से नहीं चल सकती, उसी प्रकार स्वस्थ जीवन की गाड़ी मांसाहार से नहीं चल सकती।

७. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के बुलेटिन संख्या ६३७ के अनुसार लगभग १६० ऐसे असाध्य संक्रामक रोगों की सूची प्रकाशित की गई है जिसका प्रमुख कारण मांसाहार बतलाया गया है।

८. मांसाहार से शरीर की प्रतीकारात्मक शक्ति घटती है। हड्डियां कमजोर होती है। स्मरण शक्ति घटती है। मानव ध्यान में स्थिर नहीं रह सकता। मनुष्य क्रूर, हिंसक, निर्दयी कामी, क्रोधी, चिड़चिड़े स्वभाव वाला बनने लगता है। इसीलिए प्रायः मांसाहार भी शाकाहारी जानवरों का ही किया जाता है। ऐसा क्यों ?

९. शाकाहारी व्यक्ति मांसाहारियों की अपेक्षा कम रोग ग्रस्त होने से लम्बी आयु वाले होते हैं।

१०. घोड़ा पूर्णतः शाकाहारी है। फिर भी ताकत का मापदण्ड अश्व शक्ति में होता है। शेर शक्ति में नहीं ? अतः मांसाहार को पौष्टिकता का प्रतीक बतलाना मिथ्या धारणा है।

११. शाकाहार आहार ही नहीं एक जीवन शैली है। आत्मानुशासन का प्रतीक है। वासनाओं का अवरोधक है। संयमित, अनुशासित जीवन का मूलाधार है।

मांसाहार का आर्थिक दृष्टिकोण

१. मांसाहार शाकाहार की अपेक्षा महँगा है। जीवन अमूल्य है। अतः जो वस्तुएं किसी को बिना हानि पहुंचाये प्राप्त हो वे प्रत्येक व्यक्ति से सस्ती है।

२. एक किलो मांस निर्माण के लिए सतर किलो घास पशुओं को खिलाना पड़ता है। उस अनाज के लिए जितनी जमीन चाहिए, उस जमीन में यदि अनाज पैदा किया जावे तो ७० लोगों को प्रतिदिन एक वक्त का भोजन मिल सकता है।

मांसाहार और पर्यावरण

दुनियां में किसी भी प्राणी अथवा वनस्पति की सृष्टि निरर्थक नहीं "God gives & forgives but man gets & forgets" भगवान तो देता है। और क्षमा भी करता है, परन्तु मानव उसके एहसानों को भूल जाता है।

प्रकृति का पर्यावरण संतुलित रखने एवं प्रदूषण रोकने में सबकी अपनी-अपनी भूमिका है। हम यदि इस सत्य को नकारते है तो यह हमारा अज्ञान है। जैसे चन्द वनस्पतियां खाने के लिये, कुछ पशु पक्षियों के आहार के लिये तो कुछ उनके रात्रि विश्राम हेतु आवश्यक हैं तो कुछ प्राण वायु छोड़ते हैं। प्रकृति के साथ अनावश्यक छेड़छाव करने से ही प्राकृतिक विपदायें आती है।

२. आज तरंगों के प्रभाव से कौन परिचित नहीं है ? टी०वी०, रेडियो, स्टेशनों से प्रसारित कार्यक्रमों की तरंगे क्षण मात्र में सारे विश्व में प्रसारित हो जाती है तथा हजारों मील दूर बैठा व्यक्ति उसी क्षण उस दृश्य को देख सकता है, सुन सकता है। दूरस्थ और रेकी चिकित्सा करने वाले हजारों मील दूर बैठे व्यक्ति का उपचार कैसे करते है ? डाऊजिंग पद्धति द्वारा शरीर के छोटे से छोटे अवयव, जैसे रक्त की बूंद, बाल, नाखून आदि से फोटो अथवा हस्ताक्षर की तरंगों के आधार पर संबंधित व्यक्ति के रोगों का निदान तथा प्रश्नों का समाधान कैसे ढूढ़ लिया जाता है ? स्पष्ट है किसी पदार्थ से निकलने वाली तरंगों का प्रभाव तुरन्त समाप्त नहीं होता। तब क्या मांसाहार के कारण वध किये जाने वाले जानवरों की बददुआओं की तरंगे क्या प्रकृति में

असंतुलन पैदा नहीं करेगी ? मांसाहार करने वालों के विचार, रहन-सहन, चिन्तन, मनन को निश्चित रूप से विकृत करेगी। आभा मंडल प्रदूषित होगा। स्वच्छ एवं शुद्ध आभामण्डल शरीर के ऊर्जा चक्रों को संतुलिता रखता है। जो शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, विकास के लिए आवश्यक है।

मांसाहार न्याय संगत नहीं ?

१. अगर कोई जानवर मनुष्य को खा जाता है तो उसको नरभक्षी कहा जाता है। ऐसे जानवरों को लोग जिन्दा नहीं रहने देते। परन्तु मांसाहारी जीवन पर्यन्त कितने प्राणियों की हत्या कर खा जाते है, फिर भी ऐसे मानव को सभ्य, बुद्धिमान मनुष्य मानना कदापि न्याय संगत नहीं।

२. इन्दिरा गाँधी की हत्या करने वाले सतवंत सिंह और महात्मा गाँधी के हत्यारे नाथूराम गोडसे हत्या के आरोप में पकड़े जाने के बावजूद उनको तुरन्त फाँसी नहीं दी गई। न्यायालय के नियमानुसार मुकदमा चला। सरकार ने करोड़ों रुपयों का व्यय वहन किया। इतने बड़े राष्ट्रीय नेताओं की हत्या करने वालों को फाँसी देने के लिए भी जिनके हाथों सत्ता है कितनी कार्यवाही करनी पड़ी ? इसका कारण न्याय का तकाजा है अपराधी दण्ड से बच गया तो चल सकता है परन्तु किसी निर्दोष को दण्ड न मिले। अतः निरपराध प्राणियों को मांसाहार हेतु मारने वाले न्याय की साधारण प्रक्रिया का भी पालन नहीं करते ? प्रकृति का दण्ड देने का अपना अलग ही विधान है, उसके कानून की अवहेलना करने वाला कभी वच नहीं सकता। जैसा करोगे वैसा फल मिलेगा, जिसको मारने में सहयोगी बनोगे उसके हाथो मारे जाओगे। प्रकृति में देर हो सकती है, अन्धेर नहीं है। जो प्रकृति के इस अटूट सिद्धान्त को नकारता है, उसको भविष्य में पछताना पड़ेगा। अपराध के प्रथम प्रयास में तुरन्त दण्ड से बच जाने वाला, अपनी सफलता पर गर्व करे तो यह उसकी मूर्खता ही समझनी चाहिये।

गला जो काटे और का, अपना रहे कटया।
साई के दरबार में बदला कहीं न जाय।।

३. यदि आपके बच्चे को कोई मार डाले, उस पर क्रूरता करे, अत्याचार करे तो क्या आप उस व्यक्ति पर प्रसन्न होंगे ? यथा शक्ति आप उसे दण्ड देंगे। अतः अपनी सुरक्षा एवं प्रसन्नता चाहने वालों को दूसरों की सुरक्षा एवं खुशी प्रदान करना सीखना चाहिये। कर्ज, मर्ज और फर्ज के बारे में व्यक्ति

को पूर्ण सजग रहना चाहिये। प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष, जाने, अनजाने रूप से जीवों पर होने वाली क्रूरता एवं हिंसा में सहभागी नहीं बनना चाहिये। पशु भले ही बेजुबान हैं परन्तु बेजान नहीं। प्रकृति की मर्यादाओं का उल्लंघन होता है तो प्राकृतिक आपदाओं, अप्रत्याशित दुर्घटनाओं के रूप में बदला लेती है। विश्व भी एक परिवार है। जिसमें खरबों खरब जीवधारी जीते हैं। क्या कोई अपने कुटुम्बियों की हत्या करने वालों को अच्छा मानेगा? प्रकृति का विधान स्पष्ट है।

सताते हैं जो औरो को, सताए वे भी जाएँगें।
बचाए हैं जो औरों को, बचाए वे भी जाएँगें।।

मांसाहार और अध्यात्म

दुनिया का कोई धर्म विश्वासघात की सीख नहीं देता। अतः पहले तो पशुओं को पालना, अच्छा खिलाना—पिलाना तथा बाद में मांसाहार हेतु उनका वध करना अधर्म नहीं तो क्या? इसीलिए सभी धर्म प्रवृतकों ने मांसाहार का निषेध किया परन्तु उन्हीं के अनुयायी अपनी स्वाद लोलुप प्रवृति के कारण धर्म के नाम पर पशुबली करे कितना विसंगत है।

इस्लाम मत में पैगम्बर मोहम्मद साहब ने पवित्र ग्रन्थ 'हवीस' में अपना कलाम फरमाते हुए कहा 'सभी प्राणियों पर दया करो।' दुनिया वालों पर तुम रहम करो क्योंकि खुदा ने तुम पर बहुत मेहरबानी की है। कुरान शरीफ में सुरे बकर में हज के वर्णन में लिखा है। जानवरों को मारना और खेती को तबाह करना वे पसन्द नहीं करते। कुरआने हकीम की सूरत अलहज ३२-२२ में स्पष्ट किया गया है कि न तो पशुओं का मांस और ना ही उनका रक्त ईश्वर तक पहुंचता है। इस्लाम में पशुओं के अधिकारों को बहुत महत्त्व दिया गया है और मनुष्य को आदेश दिया कि उनके अधिकारों की रक्षा करें।

गुरू ग्रन्थ साहब के बार मांस महल्ला एक जेज १४० में गुरूनानक देव ने कहा कपड़े पर खून लगने से कपड़ा गन्दा हो जाता है, वहीं खून जब मनुष्य खावेगा तो उसका चित्त निर्मल नहीं रहेगा। नानक प्रकाश पूर्वार्ध के ध्याय ५५ वन मानुजा में उन्होंने कहा—'मांस मत खाओ, मांस खाने वालों का, उनके हाथ का भोजन मैं नहीं करता।

जैन, बौद्ध एवं हिन्दू धर्म का प्राण ही अहिंसा है।

कहने का तात्पर्य कोई भी धर्म हिंसा, क्रूरता की बात नहीं कहते, फिर भी उनके अनुयायी मांसाहार करे। उनके आचरण में क्या विरोधाभास नहीं हैं ?

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामय।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्॥

सरकारी नीतियां

आज हमारा दुर्भाग्य है कि अहिंसा प्रधान भारत में पहले जहां विश्व में आध्यात्मिकता का निर्यात होता था आज स्वतन्त्र भारत में मांसाहार का निर्यात दिनों—दिन बढ़ रहा है। जहां से सत्य, अहिंसा, दया, करुणा की भावना प्रस्फुटित होती थी वहां से क्रूरता, निर्दयता, बर्बरता का निर्यात हो रहा है। कृषि मंत्रालय मांसाहार को बढ़ावा देने के लिये विभिन्न सुविधायें उपलब्ध कराता जा रहा है। शिक्षा मंत्रालय मांस उत्पादकों के प्रभाव से मांसाहार के दुष्प्रभावों से विद्यार्थियों को अवगत कराने की जिम्मेदारी से दूर भाग रहा है। अमेरिका में मांस के विज्ञापन पर प्रतिबंध है, परन्तु हमारा संचार मंत्रालय मांसाहार का प्रचार कर अहिंसा प्रेमियों की भावना को खुल्ले आम ठेस पहुंचा रहा हैं। स्वास्थ्य मंत्रालय अपनी असजकता, अनैतिकता, अदूरदर्शिता एवं मांस विक्रेताओं के दबाव एवं चापलूसों से प्रभावित हो मांसाहार के दुष्प्रभावों से संबंधित तथ्यों पर ईमानदारी पूर्वक चिन्तन नहीं कर रहा हैं जिसके परिणाम-स्वरूप रोग एवं रोगियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही हैं। पशु कल्याण विभाग पशुओं पर ज्यादा बोझ न ढोना, उनको कष्ट पहुंचाने पर तो दण्ड की बात करता हैं परन्तु पशुओं को जान से मारने वालों पर कोई दण्ड का कानून नहीं बनवाता। यह कैसा कानून ? पशु कल्याण विभाग को कानून को न्याय संगत बनाने में अपनी अहम् भूमिका निभानीं चाहिये। केवल पशु कल्याण पखवाड़ा घोषित करने मात्र से उसके वक्तव्यों की इति श्री नहीं हो जाती। पहले मांसाहार उद्योग को सरकारी संरक्षण नहीं था अतः सामूहिक रूप से पशुओं का वध नहीं होता था। जब तक राजनीति के साथ मानवता की अनदेखी होगी, विकास के स्थान पर राष्ट्र का पतन ही होगा। राष्ट्र की स्थिति का चित्रण करते हुए कवि की व्यथा बोल रही हैं—

देश में हिंसा का दावानल जल रहा है, पुण्य के नाम पर पाप चल रहा हैं।

हिंसा, भ्रष्टाचार और अनीति में भी, भगवान जाने यह देश कैसे चल रहा हैं।

क्या बुद्धिमान व्यक्ति मांसाहारी हो सकता है ?

कहने का सारांश यही है कि मांसाहार स्वास्थ्य की पुष्टि से हानिकारक, आर्थिक दृष्टि से महंगा, आध्यात्मिक दृष्टि से नीच गति में ले जाने वाला, मानवीय गुणों का नाश करने वाला, पर्यावरण की दृष्टि से प्रकृति का असंतुलन पैदा करने वाला यथा न्याय की दृष्टि से अन्याय का पोषण करने वाला है। अतः जो मांसाहार करते हैं, करवाते हैं अथवा करने वालों को अच्छा समझते हैं वे सभी असजग हैं। असंस्कारित है। अपनी रसना इन्द्रिय के गुलाम स्वाद लोलुप हैं। पराधीन एवं परालम्बी है। उदासीन हैं। भ्रमित हैं। स्वयम् के प्रति भी ईमानदार नहीं है। वास्तव में जो बुराई को जानते, मानते हुए भी न स्वीकारें उस व्यक्ति, समाज और सरकार को कैसे बुद्धिमान समझा जावे।

॥ समाप्त ॥

सौजन्य से :

ARBEITS INDIA

Export House recognised by Govt. of India

Proprietor : **SANJIB BOTHRA**

8/1, MIDDLETON ROW,
5th Floor, Room No. 4
CALCUTTA-700 001

Phone : 201029/6256/4730
Telex : 021-2333 ARBI IN
Fax No.: 0091-33290174

संकलन

कर्म आदि या अनादि ?

यहाँ पर एक विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है कि कर्म आदि है या अनादि है ? आदि शब्द का अर्थ है—आदि वाला, जिसका कभी न कभी आरम्भ हुआ है। अनादि का अर्थ है—जिसका कभी भी आरम्भ नहीं हुआ हो, जो अनादि काल से चला आ रहा हो। जैन दर्शन ने इसके सम्बन्ध में अपना मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया है। उसका चिन्तन स्याद्वाद की भाषा में व्यक्त हुआ है। कर्म आदि भी है और अनादि भी है। इसका स्पष्टीकरण यह है कि कर्म-कर्म-व्यक्ति की अपेक्षा आदि भी है और वह अपने परम्परा-प्रवाह की दृष्टि से अनादि भी है। इसी सन्दर्भ में एक और चिन्तनीय प्रश्न उठता है कि कर्म का प्रवाह कब से चला आ रहा है। इस प्रश्न के समाधान में कोई निश्चित समय नहीं बताया जा सकता। इसीलिए जैन दर्शन का स्पष्टतः मन्तव्य है कि कर्म प्रवाह की दृष्टि से अनादि है और प्रत्येक प्राणी अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति में नवीन कर्मों का उपार्जन करता रहता है। अतः कर्म विशेष की अपेक्षा से कर्म आदि है। जिस प्रकार भविष्यत्-काल असीम और अनन्त हैं उसी प्रकार अतीत काल भी असीम है, अनन्त है। जो भूतकाल है, उसकी अनन्तता का वर्णन 'अनादि' शब्द के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से हो नहीं सकता। तात्पर्य यह है कर्म-प्रवाह को अनादि कहे बिना अन्य कोई उत्तर नहीं हैं। यदि कर्म पुद्गल के उपार्जन की अमुक निश्चित सीमा मानें तो एक और गम्भीर प्रश्न उद्भूत होता है कि उससे पहले आत्मा किस रूप में विद्यमान था। वह परम शुद्ध रूप में था, कर्मों के बन्धनों से सर्वथा रहित था तो फिर सर्वथा-विशुद्ध ज्योतिर्मय-स्वरूप आत्मा को कर्म कैसे, और क्यों लगे ? उसी दिन आत्मा मोक्ष-स्थान पर क्यों नहीं पहुंच गया ? उसे लोकाग्र पर अवस्थित हो जाना था। यदि परम-शुद्ध आत्मा भी कर्मो के जाल से आबद्ध हो जाए तो फिर मोक्ष अवस्था में सर्वथा विशुद्ध होने पर भी कर्मबन्ध का होना, स्वीकार करना पड़ेगा। इस दशा में मोक्ष की महत्ता ही क्या रहेगी ? उसका

क्या मूल्य रहेगा ? अत: परम-शुद्ध अवस्था में किसी भी दृष्टिकोण से कर्मबन्ध का मानना तर्क संगत नहीं हैं, युक्ति युक्त नहीं है। इसी शाश्वत तथ्य और अमर सत्य को लक्ष्य में रखकर जैन दर्शन ने कर्म-प्रवाह को अनादि स्वीकार किया है।

संसारी जीव पुरातन कर्मों का विनाश करता हुआ नवीन कर्मों का बन्ध या उपार्जन करता हैं। जब तक प्राणी पूर्व बद्ध कर्मों को नष्ट नहीं कर देता हैं और नवीन कर्मों के उपार्जन द्वार को बन्द नहीं करता हैं तब तक उसकी भव-भ्रमण और कर्मबन्ध से मुक्ति नहीं होती। एक बार भी सम्पूर्ण कर्मों का नाश हो जाने पर पुनः नवीन कर्मों का बन्धन नहीं होता। क्योंकि उस अवस्था में कर्मों के उपार्जन का कोई भी कारण विद्यमान नहीं रहता हैं। आत्मा की इसी चरम और परम अवस्था को मोक्ष, मुक्ति, सिद्धि अथवा निर्वाण कहते हैं।

—श्री रमेशमुनि शास्त्री

साभार : जिनवाणी—नवम्बर-१९९६

स्व० नरेन्द्र सिंह जी बैद

की पुण्य स्मृति में

–मीरा बैद

८३-बी, विवेकानन्द रोड,

कलकत्ता-७००००६

फोन : २४१-०७१९

WB/NC-330

Vol. XX No. 10 **TITTHAYARA** **Feb. 1997**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

आ. श्री कैलाससागरसूरि ज्ञान मंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा